P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-5 * (Part-1) January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आधुनिक भारतीय नाट्य साहित्य और हिन्दी नाटक

राजेन्द्र सिंह
सह–आचार्य
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
सीकर, भारत

वन्दना सैनी
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, भारत

सारांश

साहित्य और रंगमंच का बहुत ही करीब रिश्ता हैं। यदि साहित्य की पहली अभिव्यक्ति विधा कविता है तो नाटक एक उसी अभिव्यक्त विधा को जीवंत रूप देने में सशक्त विधा है। भारतीय नाटक की उत्पत्ति देखी जाए तो यह उत्पत्ति कब–कैसे एवं किन उपादानों के संयोग से हुई इस विषय पर विद्वानों में मंतव्य नहीं है। परन्तु किसी विद्वान् का मत भी अप्रमाणिक सिद्ध करना अत्यंत कठिन हैं। क्योंकि नाटक समाज आईना (दर्पण) होता हैं। समाज निरंतर परिवर्तन शील रहता हैं। आज का सामाजिक परिवेश अतीत के सामाजिक परिवेश काफी अधिक बदला हैं। प्रेमचंद ने भी साहित्य की बहुत सी परिभाषाए दी है पर मेरे विचार से उनकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में "साहित्य का जीवन से गहरा संबंध है रू एक क्रिया के रूप में दूसरा प्रक्रिया के रूप में। क्रिया रूप में वह जीवन की आभिव्यक्ति है प्रतिक्रिया रूप में उसका निर्माता और पोषक" इसलिए साहित्य मानव सभ्यता की विकास का घोतक माना जाता है। आधुनिक साहित्य के आरम्भ में ही नाटक इस विधा का प्रारंभ हुआ। नाटक विधा का उदभव और विकास का विवेचन करते हुए रामचंद्र शुक्ल इतिहास में "आधुनिक गद्य–साहित्य परम्परा का प्रवर्तन शीर्षक परिच्छेद के अंतर्गत लिखते हैं कि – विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्या साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ" इस बात पर हेनरी डब्ल्यू वेल्थ भारत का प्राचीन नाटक में लिखते है कि घटनाओं का कृत भी कितना विलक्षण हैं। करुण रस अपनें में तो एक ही है लेकिन विभिन्न परिस्थितियों में उनका अलग दृअलग रूप हो जाता है जैसे पानो के अलग–अलग रूप भंवर, बुलबुले, तरंगे तो है लेकिन वास्तव में वे सब पानी ही है। इसलिए नाटक एक कला है जहां शब्दों को इस प्रकार से संगठित किया जाता है कि उसे प्रतुत करके आनंद की प्राप्ति तो होनी ही हैं उसके साथ–साथ अनुभवों के माध्यम से ज्ञान का विस्तार होना हैं। जिस प्रकार शब्दों के बिना साहित्य नहीं रचा जा सकता उसी प्रकार रंगों रेखाओं के बिना चित्रकला की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार इस जीवंत तत्वों के बिना इन प्रदर्शनकारी कलाओं के अस्तित्व की कोई पहचान नहीं की जा सकती।

मुख्य शब्द : भारतीय नाट्य, हिन्दी नाटक, साहित्य और नाटक।

प्रस्तावना

हिन्दी नाटक में परिवर्तन या विकास के लक्षण स्वतंत्रता के बाद से प्रस्फुटित होने लगे। अपने आस–पास के जीवन को, बदलते परिवेश और जीवन मूल्यों को, सम सामयिक अनुभव को नाटक की सर्जनात्मकता के साथ प्रस्तत करने और संप्रेषण करने की अच्छी शुरूआत हुई। पचासोत्तर नाटककारों में सजगता उत्पन्न हो गई उससे अपनी जमीन और पंरपराओं से जुड़ने की , जुड़कर कुछ नया, आधुनिक और नितांत आत्मीय कहने की आकुलता उत्पन्न हो गई। इन तमाम परिवर्तनों के तहत रंगमंच का पश्चिमी प्रयोगों वा प्रभावों के बोझिलपन से मुक्त कर जनमानस और भारतीय शास्त्रीय और लोक परंपराओं से संबद्ध होकर सहजता एवं उन्मुक्तता देने की प्रयत्न शुरू हो गये हैं।

साहित्य की हर विधा परिवर्तन की प्रक्रिया को अपनी सामर्थ के अनुसार ग्रहण करती है, और उस परिवर्तन की प्रतिक्रया द्वारा अपनी भूमिका निभाती है। पचासोत्तर नाटक परिवर्तन गामी है। मनुष्य अपनी समय की सामाजिक, राजनीतिक, ओर धार्मिक प्रवृत्तियों से परिवर्तित होता है उसके साथ अपनी साहित्य को भी परिवर्तित करता रहता है। मनुष्य अपने सोच–सुविधा के अनुसार अपनी मान्यताएँ बदलता रहता है।

अध्ययन का उद्देश्य

आज का स्वर रंगमंच की दृष्टि से आशावादी बन गया है। मानव मूल्यों के प्रति अगाध निष्ठा के कारण आज की कुहासा में किरण देखी जा रही है।

यदि हम साहित्य और रंगमंच के इस मूलभूत अंतर को समझ लें तो उनकी समीक्षा और आलोचना के प्रतिमानों पर खुलकर बातचीत की जा सकती है, इसलिए भारतीय नाट्य साहित्य आज समाज को एक नई दिशा देने का काम कर रहा है। नाटक यह दृश्य श्रव्य माध्यम होने के कारण इसका प्रभाव ज्यादा बढ़ गया है, जाहिर है कि रंगमंच के सौन्दर्य शास्त्र पर गहराई से विचार करने में असंख्य और प्रस्तुति, सिद्धान्त और व्यवहार परम्परा और शास्त्र इन सभी चीजों पर ध्यान देना आवश्यक है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य आधुनिक भारतीय नाट्य साहित्य और हिन्दी नाटक के मध्य समानता को परिभाषित करना है तथा इनमें होने वाले विकास को आधुनिकता के साथ जोड़कर हिन्दी साहित्य को बल प्रदान करना है।

विशय विस्तार

साहित्य मानव की चेतना और विचारों का समाहार रूप हैं इसीलिए उस में मनुष्य जीवन की वास्वतिकताओं की अभिव्यक्ति अनिवार्य रूप से होता है। साहित्य समाज के असली रूप को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्न करती है। साहित्य समाज व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग है। समाज मे जो भी परिवर्तन का चिन्ह दिखता है तो उसको साहित्य ग्रहण करके एक दिशा प्रदान करती है। गतिशीलता समाज में ही नहीं साहित्य में भी दिखाई पड़ती है। उस साहित्य का सार्थक अध्ययन की आवश्यकता है।

हिन्दी नाटक जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक संदर्भ से जुड़ा होने के कारण वास्तविक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है। नाटक का कथ्य कितना भी व्यक्ति परक हो परंतु वह एक समाज को साथ लेकर चलता है अर्थात एक से अधिक व्यक्तियों से सामूहिक प्रयास द्वारा ही दृश्यमा को प्राप्त करता है। – "हिन्दी नाटककारों ने जीवन के व्यापक स्तर पर इसी प्रकार की अनेक घटनाओं को अपनी कृतियों का प्रतिपाध्य बनाया है जहाँ जीवन की इस द्वन्द्व मूलक स्थिति के बीच ही इस का विकास माना है।" हिन्दी नाटक मे यदि एक ओर वस्तुगत प्रतिपादन में नवीनता आई तो दूसरी ओर शैली एवं शिल्प के नीवन प्रयोग भी हुए। भावुकता पूर्ण वातावरण, कल्पनाजन्य चित्र एवं काव्यमय जीवन का परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकरण करता हुआ पचासोत्तर नाटककार आधुनिक जीवन की बढ़ती हुई समस्याओं को अधिक जागरूकता से अभिव्यक्त करते हैं। भारतेन्दु काल से ही हिन्दी नाट्य रंग में प्रयोग मिलता है। उन प्रयोगों की सीमा बढ़कर नाटक में अन्य विधाओं का सृजन किया गया है।

कोई भी विधा अपने आप सृजित नहीं होती है। उसके सृजन के पीछे सामाजिक मांग और नाटककार से जुड़ा हुआ परिवेश का हाथ रहता है। नाटक प्रयोगों के लिए एक सशक्त माध्यम है क्योंकि उसमें भाव, विचार, रूप एवं दृश्य का समाहार मिलता है।– "वस्तुतः रमणीयता का ऐसा सर्वेश विधान नाटक की अतिरिक्त अन्य किसी विधा में सहज नहीं, यह निर्विवाद है। वास्तव में आत्मप्रेरित भाव–राशि का उतना किसी भी अन्य व्यंजनाओं में नहीं, क्योंकि जिस स्वरूप और प्रवेश से भावना और विचार का उद्वेलन हमारे आंतरिक जगत में होता हैं तथा जिस अध्याय के लिए एवं जिस स्वरूप में हमारी आत्म उनकी आकार देने के लिए व्याकुल हो उठती है, उन सब का परिपूर्ण प्रतिफलन और अवतरण नाटक के अतिरिक्त किसी अन्य अभिव्यक्ति में संभव नहीं।"

समाज के आर्थिक, नैतिक राजनीतिक ढ़ाचे में परिर्वतन के साथ साथ मूल्य में भी परिवर्तन होता रहता है। नये युग के आगमण के साथ साथ नयी मान्यताएँ और नाटक में अपने साहित्यिक मान्यताओं में अनेक मौलिक परिवर्तन मिलते हैं। पचासोत्तर नाटक अपने कहे हुए विषय को सांस्कृतिक दृष्टि से अभिव्यक्त करता है। जनता की आकांक्षाओं के अनुसार हिन्दी नाटक अनेक अन्य विधाओं की सहायता से अपने आपके सुसोभित करता है। प्रत्येक विधा नाटक को जन जीवन से जुड़ने की काय में ही प्रयत्न करते हैं।

जो भी हो, कोई काल अथवा तो विधा पूर्ण विकसित रूप स्वरूप के साथ अनायास ही अवतरित नहीं होती। उसकी उद्गामी मूल पहले से किसी–किसी न रूप, अवस्था में निहित होता है। अपने प्रारंभ से वह सतत विकास करती हुई अपना रूप निखार लेती है और उसका विवेचना या निर्धारण अविकसित, अल्पविकसित या फिर अर्द्धविकसित अवस्था में किया जाता है तो वह समग्र नहीं हो सकता।

कोई भी विधा अपनी विकास यात्रा के क्रम में ही नवीन रूप धारण करती रहती है कही पर वह कथ्य या वस्तुगत परिवर्तन का शिकार होती है तो कहीं रूपगत नवीनता का। नाटक ने भी समय–समय पर सम सामयिक परिवेश और युगीन आग्रह के अनुरूप अपने सज और कथ्य को बदला है। कहीं पर वह उपरूपकों के रूप में अववरित हुआ है तो कही पर एकांकी और गीतिनाट्य के रूप में। कहीं पर यदि उसने नाट्य रूपांतर को अपनाया है तो कहीं नुक्कड़ नाटक का। लेकिन, नाट्य के तात्विक वैशिष्टय को उसने हर जगह प्रवाहमान ही रखा है।

हिन्दी नाटकः विधापरक परिवर्तन

आधुनिक हिन्दी नाटक भारतेन्दु एवं प्रसाद के प्रतीकात्मक दृष्टिकोण का स्पर्श पाकर एक नवीन रूप में प्रस्तुत हुआ। यह रूप संस्कृत, लोक नाट्य परंपराओं एवं पश्चिम की विविध नाट्य परंपराओं का समन्वित रूप था। वही रूप पचासोत्तर नाटकों में कथ्य और शिल्प दोनों ही आधार पर एक नए आयाम में ढ़लने लगा। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल का वक्तव्य सही लगता है कि – "नाटय लेखन के स्तर पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धी विषयगत नवीनता, मानवीय संवेदना एवं अनुभूतिगत सत्यता है। आधुनिक युग में व्यक्तित्व के संघटन की समस्या प्रमुख रूप से अधिकाश नाटकें का विषय रही है। 'मादा कैक्टस' का 'अरविद' 'अन्ध युग' का 'अश्रवत्थामा', 'राकेश' के 'आषाढ़ का एक दिन 'कालिदास', 'आधे अधूरे' की 'सावित्री' आदि सभी पात्रों के समक्ष अपने व्यक्तित्व को संघटित करने एवं उसकी तलाश है। सभी पात्र अपने युग की स्थापनाओं के विरूद्ध एक व्यापक यथार्थ के परिवेश में अपने व्यक्तित्व को खोजते हैं। व्यक्तित्व की यहीं खोज और पहचान आधुनिकता एवं आधुनिक नाटक का प्रमुख एवं मूल प्रश्न है।"

आजादी मिलने के बाद अर्द्ध शताब्दी के हिन्दी नाट्य लेखन पर गैर करें तो वह अपना समय और समाज का सच्चा एवं साफ दर्पण जैसा दिखता है। पचासोत्तर नाटककार ने बंधी फार्मूलाबद्ध दृष्टिकोण के, रूढ़ियों और पुराने संस्कारों के विरूद्ध एक लड़ाई लड़ी है। उन्होंने नाटक के कलेवर को ही नहीं प्रक्रिया को भी बदला, रंगमंच को गति और जीवन दिया और नाटक के प्रति मौलिक समीक्षा दृष्टि की आवाज उठायी।

साहित्य सृजन के लिए कोई सीमा नहीं होती है। एक ही क्रम में जाकर पनपनेवाली कोई साहित्य प्रक्रिया ज्यादा दिन तक प्रतिष्ठित नहीं होती है। जनेच्छा को प्रतिबिंबित करने के लिए अपने प्रारूप को बदलना आवश्यक है। साधारण रूप से कविता, उपन्यास, कहानी आदि अपनेक्षाकृत लोक प्रिय हैं, उनकी मांग कहीं अधिक है, उनके माध्यम से पाठक तक सीधे पहुँचना अधिक सहज और सुलभ है। इसलिए पचासोत्तर नाटककार उपन्यास और कहानियोँ के तत्वों को अपने नाटकों के प्रारूपों में लाने का प्रयत्न करते हैं। नाटक साहित्य की कठिन विधा होते हुए अपने आप को प्रयोगों कि लिए समायत करने में सक्षम होता है। पचासोत्तर नाट्य जगत में अनेक प्रयोग मिलत हैं। कथ्य परक, शिल्प परक, शैली परक प्रयोगों के साथ–साथ विधा परक प्रयोग भी मिलते हैं। हिन्दी की सृजनात्मक साहित्यिक विधाओं में एक होने के कारण नाटक अपने कथ्यगत ढांचा को बदलने के लिए युगानुकूल रंगमंचोपयोगी नाटक लिख सके।

नाटक के प्रयोगों में प्रायः किसी युग के जीवन में अभिव्यक्त सामाजिक संबंधो और उससे प्रकट होने वाले मूल्यों और मान्यताओं का दर्शन होता है। विशुद्ध–से–विशुद्ध और व्यक्तिगत रूप में भी नाटक पारस्परिक संबधों और अनेक मूल्यों पर किसी–न– किसी प्रकार की टिप्पणी हुए बिना नहीं रह सकता। नाटकों का उद्देश्य सदा विचारधारा परक होना चाहिए इस के लिए पचासोत्तर नाटककार अपने कहे हुए बात को अनुभूति पूर्वक कहने के लिए प्रयत्न करते हैं। "इस मामले में हिन्दी नाटक, पश्चिमी नाटय रूपों शिल्प पद्धतियों को लेकर तो प्रयोग कर ही रहा है, साथ ही उसमें पूरी तरह भारतीय नाट्य–रूपों की खोज में परंपरा के नये और आधुनिक सर्जनात्मक अन्वेषण की कोशिश भी दिखाई देती है।"

नाट्य साहित्य का बड़ा भारी भाग धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखा गया है। पचासोत्तर नाटक सामूहिक आंदोलन का अंग और साधना बन गया है। गीति नाट्य, लोक नाट्य, नाट्य रूपांतर, नुक्कड़ नाटक, अनुवाद नाटक आदि विधाएँ हिन्दी नाट्य जगत में पचास के बाद प्रवेश करते है। स्वतत्र विधाओं के रूप में अभिव्यक्त होकर अपने–अपने छाप पचासोत्तर नाटक पर छोड़ते हैं। देश की जागरूक रंगकर्मी ने प्रयोग वादी पद्धतियों को दृष्टि में रखकर अनेक बहुभाषीय नाटकों को हिन्दी में अनुवाद किए हैं। अनेक कहानियों और उपन्यासों को रूपांतारित करते हैं। इस कारण से हिन्दी नाटक का क्षेत्र और भी विस्तार बन गया है।

निष्कर्ष

जो भी नाट्य विधांए पचासोत्तर नाटकों में देखा जाता है वे सब भारतेन्दु काल में भी प्राप्त होते हैं। लेकिन नयी दृष्टि से नये रूप से रंगमंच को परिप्रेक्ष में रख कर पचास के बाद सामने आते हैं पुराने आयामों को नवीन रूप में प्रस्तुत करना पचासोत्तर नाटककारों का एक प्रधान लक्षण रहा है। उसी लक्षण के अनुसार हिन्दी रगकर्मी गीति नाट्य, लोक नाट्य तदन्तर प्रक्रियाओं को एक विधा परक स्थित प्राप्त करने में सक्रिय होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

रंगरूप दर्शन, मधुकर तोरडमल, पृ. 01
हिंदी नाटक : रंगशिल्प दर्शन, डॉ. विकल गौतम, पृ. 7
हमारी नाट्य परम्परा, श्रीकृष्णदास, पृ. 267
हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 421
हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृ. 305
हिंदी नाटक और साहित्य का इतिहास, सोमनाथ गुप्त, पृ. 200
हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. 604
साठोत्तरी हिंदी नाटक, डॉ. रामजन्म शर्मा, पृ. 208
डॉ0 अजब सिंह, रचनात्मक क्रान्तिकारी यथार्थवाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी 221001
डॉ0 अजब सिंह, यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी 221001, प्रथम संस्करण 1998
अनीता राकेश, चन्द सतरें और, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली संस्करण 1975
अनीता राकेश, मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली संस्करण 1984
नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य भारतीय भण्डार प्रकाशन, इलाहाबाद
निर्मला हेमन्त, आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिद्वान्त, अक्षर प्रकाशन प्रा0लि0 दरियागंज, दिल्ली
नेमिचन्द्र जैन, मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2006